ORIGINAL RESEARCH PAPER | Social Science | Volume : 6 | Issue : 11 | November 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

vkpk;Z vdyad no jktokfrd : f'k{kk Lo:i

KEYWORDS

Mk- fxkokxuk ,lekl | "kk/kkFkhZ uehpan tkuu

व्याख्याता संस्कृत विभाग श्रंउपं डपससपं भगवानदास राजकीय स्नातकोत्तर वि वविद्यालय, महाविद्यालय, चिमनपुरा भाहपुरा जिला–जयपुर (राज.)

संस्कृत विभागराजस्थान जयपुर (राज.)

f'k{kk Lo:i

राजवार्तिक एवं आदिपुराण में शिक्षा का पर्याय विद्या, ज्ञान और श्रुत आया है। बताया गया है कि जब आदि तीर्थंकर के बालक बालिका व्यस्क हुए तो उन्होने उन्हें स्वयं ही शिक्षारम्भ कराया। इस सन्दर्भ में लिखा है कि रूप लावण्य और शील से समन्वित होने पर भी विद्या से विभूषित होना परम आवश्यक है। इस लोक में विद्वान् व्यक्ति ही सम्मान को प्राप्त होता है। विद्या ही मनुष्य को यश देने वाली है, विद्या ही आत्मकल्याणक करने वाली है और अच्छी तरह से अभ्यास की गयी विद्या ही समस्त मनोरथों को पूर्ण करती है।

कन्या हो या पुत्र, दोनों को समानरूप से विद्यार्जन करना चाहिए। कल्पलता के समान समस्त सुखों, ऐश्वर्यों और वैभवों की प्राप्ति विद्या द्वारा ही होती है। अतएव बाल्यकाल से विद्या प्राप्ति के लिए निरन्तर सचेष्ट रहना चाहिए। आदिपुराण में जीवनोत्थान और जीवन को सुसंकृत करने पर बल दिया गया है।

शिक्षा का लक्ष्य आन्तरिक दैवी शक्तियों की अभिव्यक्ति करना है, अन्तर्निहित श्रेष्ठतम उदात्त मानवीय गुणों का विकास करना है तथा शरीर, मन और आत्मा को सबल बनाना है। त्याग, संयम, आचार–विचार और कर्त्तव्यनिष्ठा का बोध भी शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होता है। सतत् स्वाध्याय से ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियाँ प्रादुर्भूत हो जाती है, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुचिता, बौद्धिक प्रखरता, आध्यात्मिक दृष्टि, नैतिकबल, कर्मठता एवं सहिष्णुता की प्राप्ति शिक्षा तथा स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव है। तथ्य और आंकड़े वाली शिक्षा निस्सार है।

राजवार्तिक एवं आदिपुराण में आदितीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी कन्याओं और कुमारो को जो शिक्षा दी है, उससे शिक्षा के निम्न उद्देश्यों पर प्रकाश पड़ता है:–
(1) आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशीलता ।
(2) जगत् और जीवन के सम्बन्धों का परिज्ञान ।
(3) आचार, दर्शन और विज्ञान के त्रिभुज की उपलब्धि ।
(4) प्रसुप्त शक्तियों का उद्बोधन ।
(5) सहिष्णुता की प्राप्ति ।
(6) कलात्मक जीवन–यापन करने की प्रेरणा की प्राप्ति ।
(7) अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण द्वारा भावात्मक अहिंसा की प्राप्ति ।
(8) व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसरों की प्राप्ति ।
(9) कर्तव्य पालन के प्रति जागरूकता का बोध ।
(10) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का उन्नयन ।
(11) विवेक दृष्टि की प्राप्ति ।

f'k{kk i)fr &

शिक्षा पद्धति (आदि 2/102–104, 21/96) :– आदिपुराण से कई प्रकार की शिक्षा पद्धतियों का संकेत प्राप्त होता है। जिन्हें निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है:–
(1) पाठ– (आदि 16/104, 16/105–108)
(2) प्रश्नोत्तर – (आदि 1/138, 2/2, 2/26, 2/28–29, 12/212–252)
(3) शास्त्रार्थ– (आदि 4/16–30, 5/27–88)
(4) उपदेश – (आदि 21/96, 23/61–72, 24/85–180)
(5) उपक्रम या उपोद्घात (आदि 2/102–104)
(6) पंचांग– (आदि 21/96)

¼1½ iFke i)fr में गुरू या शिक्षक शिष्यों को पाठ–विधि द्वारा अंक और अक्षर ज्ञान की शिक्षा देता है। वह किसी काष्ठपट्टिका के ऊपर अंक या अक्षर देता है। शिष्य उन अक्षर या अंको का अनुकरण करता है। बार बार उन्हें लिखकर कण्ठस्थ करता है। इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से होता है। उन्होने अपनी कन्याओं को इस पाठ विधि द्वारा ही शिक्षा दी थी। यह शिक्षा विधि सामान्य बुद्धिवाले अल्पवयस्क छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है। इस पद्धति में अभ्यास का भी अन्तर्भाव निहित हैं। शिक्षक द्वारा लिखे गये अंक अक्षरों का लेखन और वाचन दोनो ही प्रक्रियाओ से शिक्षार्थी अभ्यास करता है। इस प्रक्रिया में अभ्यासात्मक प्रश्नों के उत्तर लिखे जाते है। राजवार्तिक व आदिपुराण में इस पद्धति का उपयोग सर्वाधिक हुआ है। इस पद्धति में मूलतः तीन शिक्षातत्व पाये जाते है –

¼1½ mPpkj.k dh Li"Vrk %& शिक्षक वर्णों का उच्चारण उनके स्थान और प्रयत्न के अनुसार शिक्षा सिखा पाता है। शिक्षाग्रन्थों में जिस उच्चारण विधि का निरूपण आता है, उस विधि के अनुसार वर्णों का उच्चारण शिष्यों को सिखाया जाता है।

(2½ y[kudyk dk vH;kl %& पाठ पद्धति का दूसरा तत्व लिखना सीखने का अभ्यास है। ब्राह्मी और सुन्दरी को लिखने की कला सिखलायी गयी थी।

¼3½ rdkRed l:[;k i:.kkyh %& वस्तुओं के गिनने के रूप में अंकविद्या का प्रारम्भ हुआ। अंक का महत्त्व हमें तभी मालूम होता है, जब हम कई समूहों में एक अंक संख्या को पाते हैं। तब हम वस्तुओं का बार बार नाम न लेकर उनकी संख्या को कहते है। इन संख्याओ का विकास जीवादि पदार्थो के ज्ञान के लिए हुआ है। अतः पाठ शैली के तीसरे तत्व द्वारा परिकर्माष्टक योग, गुणा, घटाव, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, एवं घनमूल इन आठ क्रियाओं का परिज्ञान किया गया है।

¼2½ vkfnizjk.k e: i:'ukRrj i)fr dk i:;ksx श्रेणिक प्रश्नकर्ता शिष्या के प्रतीक और गौतम गणधर उत्तर देने वाले गुरू के रूप में पाया जाता है। देवियाँ विभिन्न प्रकार के प्रश्न माता से पूछती है और माता उत्तर देकर उनके ज्ञान का संवर्धन करती है। समस्यापूर्तियाँ और पहेलियाँ भी इसी विधि में सम्मिलित हो जाती है। समस्यापूर्ति आदि का लक्ष्य बुद्धि को तीव्र बनाना तथा अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना है।

इस प्रकार शिष्य गुरू से प्रश्न करता है और गुरू चमत्कारपूर्ण उत्तर देकर शिष्य को सन्तुष्ट करते है। इस प्रणाली द्वारा विषयों को हृदयंगम करने में विशेष सुविधा होती है। गूढ़ और दुरूह विषय भी सरलता पूर्वक समझ में आते हैं।

प्रश्नोत्तर दोनों ही ओर से किये जाते हैं। शिष्य भी प्रश्न करता है और गुरू भी शिष्य से। गुरू प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर देकर शास्त्रीय ज्ञान का संवर्द्धन करता है। शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से यह प्रौढ़ शैली है, इसका प्रयोग व्यस्क और प्रतिभाशाली छात्रों के लिए ही किया जाता है।

(3½ 'kkL=kFk ikphu f'k{kk i)fr की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापनापूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न प्रकार के तर्कों, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती हैं। प्रमाण, नय, निक्षेप द्वारा वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन शास्त्रार्थ प्रणाली पर किया गया है।

आदिपुराण में शास्त्रार्थ मन्त्रियों के बीच आप्तत्व की जानकारी के लिए किया गया है। इस विधि में गुरू व शिष्य को शास्त्रार्थ करने की पद्धति एवं तत्काल उत्तर प्रत्युत्तर देने की शक्ति का विकास होता है। इसमें स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष में दूषणोद्भावन की प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। शास्त्रों का सम्यक् परिज्ञान इसी पद्धति द्वारा प्राप्त किया जाता था।

इस शिक्षा विधि की निम्न विशेषताएँ हैं –
1. ''ननु'' शब्द द्वारा शंका उत्पन्न करना।
2. ''इति चेन्न'' द्वारा शंका का निराकरण करना।
3. यथेकं द्वारा परपक्ष का निराकरण और स्वपक्ष की पुष्टि।
4. अनवस्था, चक्रक, प्रसंगसाधन आदि दोषों का उद्भावन।
5. एवं 'आह,' 'तत्र,' 'यत्र,' 'तन्त्रोक्त' आदि संकेतांशों द्वारा कथनों और उद्धरणों को उपस्थित कर समालोचन ।
6. विकल्पों को उठाकर प्रतिपक्षी का समाधान करते हुए स्वपक्ष की सिद्धि। इसके लिए आक्षेपिणी, विक्षेपिणी जैसी कथाओं की प्रक्रिया का प्रयोग।
7. 'तंदुक्त,' 'नादि' जैसे शब्दों का किसी वस्तु या कथन पर जोर देने के लिए प्रयोग।

¼4½ min'kfof/k %& इसका प्रमुख रूप उपदेश द्वारा शिक्षा देना है। आदिपुराण में आदितीर्थंकर का धर्मोपदेश इसी विधि के अन्तर्गत लिया जा सकता है। स्वाध्याय के पाँच भेदों में उपदेश का कथन आया है। इसका वास्तविक रहस्य गुरूद्वारा भाषण के रूप में विषय का प्रतिपादन करना है। इस विधि का उपयोग उसी समय किया जाता है, जब शिष्य प्रौढ़ हो जाता है और उसका मस्तिष्क विकसित हो प्रमुख विषयों को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर लेता हैं।

¼5½ miØe ;k mik)kr fof/k %& वर्णनीय विषय को शिष्य के मस्तिष्क में पूर्णतया प्रविष्ट कर देना उपक्रम पाठ विधि है, इसी का दूसरा नाम उपोद्घात भी है। आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, अभिधेय और अर्थाधिकार ये उपक्रम के पाँच भेद हैं। आदिक्रम, मध्यक्रम और अन्त्यक्रम द्वारा वस्तुओं का प्रतिपादन करना अनुपूर्वी है। क्रमपूर्वक विषयों का परिज्ञान कराना अनुपूर्वी में परिगणित है। जो गुरू या पाठक इस विधि को अपनाता है, वह पाठय विषय का किसी क्रम विशेष के अनुसार विवेचन या व्याख्यान करता है। अनुपूर्वी से विषय को हृदयंगम करने में सहायता प्राप्त होती है।

Volume : 6 | Issue : 11 | November 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

नाम विधि में विस्तारपूर्वक वस्तुओं के नामों का प्रतिपादन किया जाता है। जो गुरू इस विधि का विशेषज्ञ होता है वह अपनी पाठ्य शैली में मनोरंजकता और सरलता लाने के लिए नाम का विस्तार करता है। एक प्रकार से इसकी गणना निक्षेपविधि में की जा सकती हैं।

प्रमाण विधि में वस्तु का सर्वांगीण निरूपण और नयविधि में एक–एक अंश का विवेचन किया जाता हैं।
अभिधेय में अर्थ का विभिन्न दृष्टिकोण द्वारा कथन किया जाता है। द्रव्य और भावपूर्वक पदों की व्याख्या प्रस्तुत कर विविध भंगावलियो की स्थापना की जाती है। एक ही विषय या वस्तु के अनेक रूपों में प्रतिपादन कर पाठ्य विषयों को सरल और बोधगम्य बनाया जाता है।

¼6½ ipkxfof/k½& इसके स्वाध्याय सम्बन्धी पाँच अंग है। इन पाँचों अंगो द्वारा विषय के मर्म को समझा जाता है।

पाठक सर्वप्रथम वाचना का प्रयोग करता है। वाचना का अर्थ पढ़ना है। उसके बाद पृच्दना–पूछकर विषय के मर्म को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। अधिगत विषय को बार–बार अभ्यास द्वारा स्मरण रखने का प्रयास अनुप्रेक्षा है। मनन और चिन्तन किये गये विषय की धारणा बनाये रखने के लिए घाख घोख कर याद करना घोष स्वाध्याय है। उपदेश के रूप में विषय को समझना या समझाना उपदेश स्वाध्याय है। पंचांगविधि द्वारा विषय की व्याख्या एवं उसे समझने का पूर्ण प्रयास किया जाता है। जिस प्रकार समुद्र की गहराई शनैः शनैः बढ़ती जाती है, उसी प्रकार पंचांगविधिःद्वारा शिक्षा का उत्तरोत्तर विस्तार होता जाता है।

शास्त्रों का पाठ उसकी व्याख्या और भाष्यों को हृदयंगम करना इस पाठशैली के अन्र्तगत है।

'kf{kd lLFkk,&& राजवार्तिक एवं आदिपुराण के आधार पर गृह, चैत्यालय आदि शिक्षा संस्था के रूप में प्रतीत होते है। आख्यानों से ज्ञात होता है कि आरम्भिक शिक्षालय गृह ही था। आदिपुराण में प्रधानतः दो प्रकार की विद्याएँ बतलायी गयी है –

(1) कुल और जाति से प्राप्त
(2) तपस्या द्वारा अर्जित

कुल परम्परा से प्राप्त होनेवाली विद्याएँ कुल जाति आश्रित कहलाती हैं। जिस प्रकार पक्षी जन्म लेते ही उड़ने की कला बिना किसी प्रकार के प्रशिक्षण के सीख लेता है, उसी प्रकार विद्याद्यर वर्ग के व्यक्ति जन्म लेने के साथ से ही विद्याओं के स्वामी बन जाते है।

आराधना से प्राप्त होने वाली विद्याएँ तपस्या अर्जित मानी जाती हैं। सिद्धायतन के समीप अथवा, नदी, पर्वत, या द्वीप के तट पर अथवा अन्य पवित्र स्थान पर पवित्र वस्त्रधारण कर जय, पूजन और अनुष्ठान द्वारा विद्या की प्राप्ति करना तपश्चरण द्वारा प्राप्त विद्याएँ मानी जाती है। अध्ययन, मनन, चिन्तन भी इस विधि के अन्तर्गत समाविष्ट है।

lUnHkZ xzUFk lwph

1. राजवार्तिक 1/9
2. डा. नेमीचन्द शास्त्री –''तीर्थकंर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा''खण्ड–2, पृष्ठ 421
3. आचार्य जिनसेन– ''आदिपुराण''–21/98
4. नियमसार /तात्पर्य वश्त्ति गाथा संख्या/91
5. मोक्ष पाहुड़/मूल /गाथा संख्या 37, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, मुम्बई, विक्रम सं 1977
6. द्रव्य संग्रह /मूल/46/देहली, 1953 ई.
7. पद्म नन्दि पंचविशतिंका अधिकार सं./1/72/ जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, 1932 ई.
8. मोक्ष पाहुड/मूल /गाथा संख्या, 50
9. आदिपुराण 24/119